International Journal of Applied Research 2015; 1(6): 43-45

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 3.4
IJAR 2015; 1(6): 43-45
www.allresearchjournal.com
Received: 10-04-2015
Accepted: 02-05-2015

डॉ0 शिवदत्त शर्मा
अध्यक्ष हिन्दी विभाग राजकीय महाविद्यालय ढलियारा (कांगड़ा) हि. प्र.

Correspondence:
डॉ0 शिवदत्त शर्मा
अध्यक्ष हिन्दी विभाग राजकीय महाविद्यालय ढलियारा (कांगड़ा) हि. प्र.

संत रविदास वाणी का सामाजिक पक्ष

डॉ0 शिवदत्त शर्मा

संत रविदास वाणी के आधार पर यह प्रमाणित होते जरा भी संदेह नहीं रहता कि संत गुरू रविदास बहु आयामी प्रतिभा के स्वामी थे। उन्हे भविष्य द्रष्टा क्रांतिकारी संत एवं दार्शनिक कहा जा सकता है। प्रायः भारतीय दर्शन में ज्ञान का अति गंभीर स्त्रोत होने के कारण विश्व में सर्वोत्तम दर्शन के रूप में प्रतिष्ठित है, परन्तु उसमें क्लिष्टता होने के कारण सम्भवतः वह ज्ञान जन साधारण तक उस तीव्रता से नहीं पहुँचा जिस तीव्रता से संतों की वाणी के प्रायः गेय पद पहुंचे। दर्शन की अनेक जटिल ग्रथियों को जितनी सरलता एवं सहजता से संतों ने, विशेषतः संत रविदास जी ने अपने गेय पदों में उतारा, उसका अन्य कोई उदाहरण नहीं मिलता। संत रविदास की वाणी सम्भवतः अन्य सम्पूर्ण संत वाणी में सब से सरल, सरस एवं ग्राह्य है, यही कारण है कि संत रविदास जी के अनेक पद लोगों को कण्ठस्थ हैं, यहां तक कि अनेक प्रभु भक्तों को यह पद किसका है कि जानकारी न होते हुए भी **प्रभु जी, तुम चन्दन हम पानी** [1] जैसे मनमोहक पदों को गाते सुना जा सकता है।

संत रविदास वाणी का सामाजिक अध्ययन करने के उपरान्त यह बात स्पष्ट उभर कर सामने आती है कि संत रविदास अपने युग के महान् समाज–शास्त्री थे, जिन्होने समाज की प्रत्येक बुराई को देखा, परखा अनुभव किया और उसके दूरगामी परिणामों का आभास करते हुए तात्कालीन समाज को सन्मार्ग पर लाने का स्तुत्य प्रयास किया। चाहे उनका उपदेश मानव को
मानव बनाने के लिए हो अथवा समाज एवं विश्व के कल्याण के लिए हो, उन्होने प्रत्येक पक्ष को ध्यान में रखकर मानव जाति को प्रेरणा दी है। [2]

संत रविदास का सम्पूर्ण दर्शन किसी एक पक्ष को लेकर आगे नहीं बढ़ता। भक्ति, ज्ञान, कर्म अथवा श्रम उनके जीवन दर्शन का आधार थे। उन्होने कहीं भी एकांगी भक्ति का ही उपदेश न देकर व्यक्ति को श्रम करने का भी उपदेश दिया है। केवल उपदेश ही नहीं अपितु स्वयं आदर्श बनकर अपने अनुयायियों को प्रेरित किया है। उनके सामाजिक दर्शन में उन्होने किन मुख्य सिद्धान्तों को अपनाकर मानव जाति को प्रेरणा दी, उनका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार हैः–

क. श्रम का महत्वः– श्रीमदभगवत्गीता का आदर्श वाक्य 'कर्मण्येवाधिकारस्ते' का अक्षरंशः अनुकरण देखना हो तो, सत्य ही संतों की वाणी में देखा जा सकता है।[3] संत कबीर से लेकर रविदास सदना, सैन आदि सभी रामानन्द के शिष्यों ने भक्ति के साथ साथ अपने नैसर्गिक कर्म की भी पूजा की तथा सम्मान सहित **' कर्म ही पूजा है'** का उद्घोष करते रहे! संत रविदास युग द्रष्टा एवं भविष्य द्रष्टा संत थे, उन्होने भी यह अनुभव कर लिया था कि मनुष्य चाहे आध्यात्मिक दृष्टि से कितना समृद्ध हो जाए, परन्तु कर्म का क्षेत्र शून्य होगा तो मनुष्य, समाज अथवा राष्ट्र कभी विकसित नहीं हो सकता। भारतीय दर्शन में भी उल्लेख है कि कर्म और ज्ञान पक्षी के दो पखों की तरह हैं तथा भक्ति उसकी पूंछ की तरह है जो विपरीत परिस्थिति में भी सद्मार्ग को चुनने में व्यक्ति की सहायता करती है, अतः तीनों ही पक्षों का अपना अपना महत्त्व है।

जैसे एक पंख के स्वस्थ न होने से पक्षी उड़ नहीं सकता वैसे ही कर्म विहीन व्यक्ति विकास की उड़ान नहीं भर सकता। संत रविदास जी ने उक्त संवेदना को अपनी वाणी में बडे ही सरल ढ़ंग से प्रस्तुत किया हैः–

जिह्वा सों ओंकार जप, हत्थन सों कर कार।
राम मिलहिं घर आई के, कह रविदास चमार।।

ख. समानताः– संत रविदास जी के दर्शन में मानव मानव से समानता का उपदेश कूट–कूट कर भरा पड़ा है। [4] संतों ने प्रायः अपनी वाणी में परस्पर समानता का पाठ पढ़ाया है। कोई भी छोटा बड़ा नहीं है, अमीर गरीब की खाई समाज के लिए उपयोगी नहीं है। किसी जति विशेष में जन्म लेकर कोई बड़ा या छोटा नहीं हो जाता। सभी मनुष्य एक ही ईश्वर की संतान है जब तक ऐसे विचार समाज में

प्रत्येक व्यक्ति के मन में न होंगे समाज कभी तरक्की नहीं कर सकता। ऊँच–नीच का भाव अन्ततः मानव द्वारा उत्पन्न किया गया है और मानवता के लिए ही सबसे अधिक घातक है।

संत रविदास मूलतः सहज एवं सरल प्रकृति के संत थे, उन्होने यह समानता का संदेश जाति, सम्पदा, रंग, सम्प्रदाय को ध्यान में रखकर ही नहीं दिया अपितु प्रत्येक धर्म और दर्शन के प्रति भी उनका यही दृष्टिकोण दिखाई देता है।

यहॉ तक कि कबीर के साथ संगोष्ठी में वे वाद–विवाद में विश्वास नहीं रखते [5] अपितु उनके दर्शन को भी आदर से सुनते एवं ग्रहण करते हैं। ऐसा समानता का प्रचारक कोई अन्य इतिहास में उपलब्ध नहीं होता।

जातिगत असमानता से वे बहुत अधिक दुखी थे। जातिगत असमानता का वे भी शिकार थे। उन्होने अपनी जाति की तथा कथित छोटे पन को व्यंग्य से अपने पदों में स्थान स्थान पर उद्घाटित करते हुए यह बताने का प्रयास किया है कि छोटी जाति से कोई छोटा तथा बड़ी जाति से कोई बड़ा नहीं होता अपितु कर्मो एवं जीवन दर्शन से कोई बड़ा या छोटा होता है। जब सिंहासन उड़कर काशी के दम्भी पंडितों की गोद में नहीं पहुंचा तो जाति का भ्रम चकनाचूर हो गया, काशी के महान पंडितों द्वारा किस प्रकार चरणों में शीश झुकाना पड़ा उसका उल्लेख उनकी वाणी में स्पष्ट देखा जा सकता है, जो स्वयं प्रमाण है कि जातिगत असमानता उचित नहीं, बड़ा वही है जिसके कर्म बड़े हैं–

जाकै कुटुम्भ के ढेढ सभ ठौर ठौंवंत फिरहि, अजहु बनारसी आस पासा।
अचार सहित विप्र करहिं दण्डौति, तिन तनै रविदासानुदासा।। [6]

इसी संदर्भ में वे कई उदाहरण प्रस्तुत करते हैं, जिन्होने निम्न जाति में जन्म लेकर प्रभु का सान्निध्य पाया तथा वैकुण्ठ को प्राप्त किया–

रे चित चेत अचेत, काहे वाल्मीक कूं देखि रे।
जाति से कोइ उपर नहीं पहुंचा, राम भक्ति विसेख रे।। [7]

अतः स्पष्ट है कि जाति, श्रेष्ठता का आधार नहीं हो सकती। इसी तरह अनेक सामाजिक असमानताओं की भी उन्होने भर्त्सना की है, तथा यह उपदेश दिया है कि मनुष्य में कोई अंतर नहीं सभी समान हैं।

संत रविदास द्वारा समानता का संदेश मूलतः व्यक्ति से लेकर विश्व तक के परिदृश्य को अपने अंदर समेटे हुए हैं। जब तक समाज में असमानता की सत्ता रहेगी चाहे वह जातिगत हो अथवा अर्थगत सभी तरह की असमानता राष्ट्र एवं समाज के हित में नहीं हो सकती। समाज शास्त्री के रूप में, उनकी परिकल्पना देखिए जहॉ किसी प्रकार की असमानता न हो वहीं उनका आदर्श शहर हैः–

बेगम पुरा शहर का नाऊं, दुखु अंदोहु नहीं तिहिं ठाउं[8]
न तसवीस खिराजु न मालु, खौफु न खता न तरस जवालु।।

1. **ऐसी लाज तुझ बिन कौन करें।**[9]
   गरीव निवाजु गुसाइयां मेरा, माथै छत्रु धरै।
   जाकि छोति जगत कउ लागै, ता पर तुहीं ढरै।
   नीचहुं ऊंच करै मेरा गोबिन्दु, काहू तैं न डरे।

समन्वयवादी विचारधारा

संत रविदास समन्वयवादी संत के रूप में जाने जाते हैं। यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि उस समय जब सम्पूर्ण समाज अत्यंत सकीर्णता में घिरा हुआ था चाहे वह जातिगत संकीर्णता हो अथवा धर्मगत सभी पक्षों में अपनी जाति, दर्शन एवं धर्म को ही श्रेष्ठ प्रमाणित करने की होड़ थी ऐसी परिस्थितियों में एक समन्वयवादी विचारधारा को लेकर चलना कोई आसान कार्य नहीं था। मानव मानव में समन्वय, जाति जाति में समन्वय के अतिरिक्त धर्म एवं दर्शनों में भी संत रविदास जी ने समन्वय स्थापित करते हुए समाज एवं मानव जाति के लिए बहुत बड़ा उपक्रम किया, जो दूसरे समकालीन संतों में नहीं मिलता। संत कबीर उद्भट्ट एवं फक्कड़ होने के कारण कटु बात कहने से हिचकते नहीं थे, इस प्रक्रिया में किसी भी जाति, धर्म एवं दर्शन को वे अपना लक्ष्य बना लेते थे। संत रविदास जी का इस तरह का दृष्टिकोण नहीं था, अपितु सब जाति, धर्म एवं दर्शन को उन्होने सम्मान एवं आदर के साथ एक जैसा कदाचित अपने से भी श्रेष्ठ कहकर एक महान् समन्यवादी संत के रूप में अपने आपको प्रतिष्ठित किया है। [10]

यही नहीं संत रविदास वाणी में इसके अतिरिक्त 'मनसा वाचा कर्मणा' तीनो ही के व्यवहार में एकरूपता का उपदेश उन्हें उच्चकोटि का समन्वयवादी संत सिद्ध करती है। यही कारण है कि संत कबीर ने भी उन्हे शिरोमणि संत कहकर संबोधित किया है। उन्होने कहा कि कथनी और करनी में एकरूपता लाना आवश्यक है। मन में जो भाव हो उन्ही का प्रतिफलन कर्म एवं वाणी में होना ही सही अर्थों में प्रभु की पूजा है। जो लोग सोचते और कहते और करते भिन्न हैं, उनके प्रति संत रविदास जी ने चिन्ता व्यक्त करते हुए कहा है कि ऐसे व्यक्तियों के समाज में निर्वाह कैसे हो सकता है–

कही अत आन, करीअत आन, कछु समझ न परै, अपर माइया।[11]

सत्कर्म एवं परोपकार

संत रविदास जी के सामाजिक दर्शन में सत्कर्म करने तथा जीवन में परोपकार करने पर बल दिया गया है। भारतीय दर्शन परम्परा के अनुसार व्यक्ति उसी का फल पाता है जो वह करता है। कर्मफल का सिद्धान्त रविदास वाणी में भी उसी तरह से मुखरित है, जैसे भारतीय दर्शन में दिखाई देता है। मनुष्य को अच्छे कर्म का फल अच्छा और बुरे कर्म का फल बुरा अवश्य भोगना पड़ता है। इस संदर्भ में उनकी पंक्तियां स्वयं प्रमाण हैंः–

जो कुछ बोआ, लूनिए सोई, ता में फेर फार नहीं कोई।
साहिब तो पै लेखा लेसी, भीर परयां भरि भरि देसी।। [12]

सत्कर्म–वस्तुतः सामाजिक दर्शन का मुख्य सिद्धान्त सत्कर्म है। भारतीय दर्शन में इसे मुख्य रूप से ग्रहण किया गया है। जब तक मनुष्य सत्कर्मो द्वारा अपना विकास नहीं करता तब तक समाज सुखी हो ही नहीं सकता। विकास आर्थिक रूप से दुष्कर्मों से भी हो सकता है परन्तु संत रविदास वाणी में स्पष्ट किया गया है कि अच्छे कर्मों का ही फल अच्छा हो सकता है, दुष्कर्मो का हिसाब किताब अंत में प्रभु को देना ही पड़ता है, अतः बुरे कर्मों की जगह सद्कर्मों की ओर प्रवृत्त होना ही अच्छा है।

अंत समय जब व्यक्ति को मृत्यु के उपरान्त अकेले ही 'पुलसरात' के मार्ग पर चलना पड़ता है उस समय कोई साथ नहीं देता। अतः मनुष्य को चाहिए कि वह अच्छे कर्म करे अन्यथा अंत में मृत्यु के आने पर पछताना पडेगा।

पंथि चलै अकेला होय दुहेला, का स्यों करै स्नेह वे।
जन रविदास कहै वणिजारिया, तेरी कंपन लागी देह वे।।[13]

वेगम पुरा शहर का नाउं[14]

संत रविदास वाणी में एक ऐसे शहर की कल्पना की गई है जहॉ व्यक्ति को किसी भी प्रकार का कष्ट, दुख न हो, न हीं वहां किसी प्रकार का भय, डर हो और न ही वहां किसी प्रकार की बेईमानी तथा रिश्वत खोरी का प्रचलन हो। संत रविदास ने ऐसे शहर की संकल्पना की है जहॉ गरीब अमीर की खाई न हो और न ही व्यक्ति, व्यक्ति के प्रति असहानुभूति रखता हो, वहां व्यक्ति को किसी भी ऐसे कर या टैक्स की प्रताड़ना न झेलनी पड़े जिसे चुकाने में गरीब को कष्ट होता हो।

वस्तुतः संत रविदास काल–द्रष्टा क्रांतिकारी समाज–शास्त्री थे। अपने जीवन काल में जब इस्लाम का साम्राज्य था, किस तरह जन साधारण को भय, दण्ड, कर एवं अन्याय से पीड़ित किया जाता था, उन्होने स्वयं अनुभव किया था। उन्होने अनुभूति के आधार पर भविष्य में एक ऐसे समाज की संरचना काल्पनिक रूप से की थी, जहां ये उपरोक्त बुराइयां न हों, तथा जनसाधारण को जीवन जीने में कठिनाई न हो। वर्तमान संदर्भ में उनकी इस कल्पना को आदर्श बनाया जा सकता है।

पीड़ पराई

इसी तरह संत रविदास ने दूसरों के दुख से द्रवित होने का उपदेश भी अपनी वाणी में दिया है। समाज में रहते हुए व्यक्ति को दूसरों के सुख दुख में सम्मिलित होने की प्रवृत्ति होनी अनिवार्य है, यही दूसरे अर्थो में मानव धर्म कहलाता है।

वस्तुतः संत रविदास जी का विश्वास था कि जब तक व्यक्ति व्यक्ति के सुख दुख से द्रवित नहीं होगा तब तक समाज में परस्पर स्नेह एवं दुख दर्द बांटने की प्रवृत्ति नहीं पनप सकती। किसी के दुख दर्द को हम बंटा नहीं सकते परन्तु उससे हमदर्दी करके उसे कम अवश्य कर सकते हैं तथा दुखी व्यक्ति महसूस करता है कि मेरा अपना भी कोई है। सुख दुख चक्रवत चलते ही रहते हैं, अतः किसी को भी इनसे दो चार होना पड़ सकता है, अतः व्यक्ति को चाहिए कि वह दूसरे के दुख दर्द को अपना ही दुख समझे तभी समाज में भाई चारे तथा स्नेह की लहर वह सकती है।[15]

संदर्भ सूची

1. संत गुरू रविदास वाणी – पद 66
2. उपरोक्त पद 74
3. रविदास दर्शन पद 19 पृ0 103
4. उपरोक्त पद 46 पृ0 49
5. संत रविदास वाणी पृ0 143
6. संत रविदास वाणी पद 117
7. उपरोक्त पद 61
8. ’’ ’’ पद 36
9. ’’ ’’ पद 118
10. संत गुरू रविदास वाणी पृ0 144
11. संत रविदास वाणी पद 26
12. उपरोक्त पद 80
13. ’’ ’’ पद 31
14. ’’ ’’ पद 35
15. ’’ ’’ पृ0 71